लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 3, संख्या: 4; जनवरी-जून, 2022

अकेले की मुक्ति संभव नहीं

✍ मधु कांकरिया

जब जब स्त्री मुक्ति की बात आती है, जेहन में कई स्त्रियाँ कौंध जाती है। खेत खलिहान में काम करती स्त्री,पीठ पर बच्चा, हाथ में कुदाल लिए आदिवासी स्त्री, घरों में चौका बर्तन माँजती स्त्री। तसले में ईंट, गारा, पत्थर धोती स्त्री, तो समुद्र में जाल फेंकती स्त्री। खायी पीयी अघाई उच्च वर्गीय स्त्री। रीति-रिवाजों और मर्यादाओं में बंधी शहरी मध्यवर्गीय स्त्री। विदेश में रहती भारतीय स्त्री ? विदेशी स्त्री? सब तरह की स्त्री जेहन में कौंध जाती है। यह कौंध इतनी बढ़ गयी है कि जहाँ भी जाती हूँ, हर जगह यही टटोलती हूँ कि स्त्री कैसे जी रही है ? कितनी आज़ाद है ?

मैं आज तक सचमुच समझ नहीं पायी कि कितनी आज़ाद है औरत ? किस वर्ग और किस देश की स्त्री सचमुच में मुक्त है। जब जब सोचती हूँ कुछ घटनाएँ बिजली सी कौंधती हैं और दिमाग में आड़ी तिरछी रेखाएँ खिंच जाती है।

सबसे पहले मैडम नीता!

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से लौटते ही मैंने उनका जनसत्ता के सबरंग के लिए साक्षात्कार लिया था। तब मातृत्व को सिरे से नकारते हुए उन्होंने कहा था, आई एम् नॉट अ मदर मटेरियल। कितनी ऊँची उड़ान भरी उन्होंने कि भारत भी छोटा पड़ गया। वे अमेरिका चली गयी, वहाँ माइक्रो सॉफ्ट से उनका टाई अप भी हुआ॥ वे आसमान में उड़ रही थी लेकिन दिन ढलते ढलते फिर क्या हुआ कि फोन पर ही वे सुबक पड़ी और कहने लगी – नथिंग तो लुक फॉरवर्ड॥ उन्होंने अपनी कंपनी बंद कर दी और अब योग और अध्यात्म से दिल बहला रही हैं।

क्यों हुआ ऐसा ? शायद इसीलिए कि सफलता और अत्याधुनिकता में रंगे उनके मन ने अपने दूसरे मन की दबी आवाज़ की अनसुनी की। न वे अपने को पूरी तरह टटोल नहीं पायी। और न ही अपने भाव जगत का विस्तार कर अपनी ममता, आतंरिक सौन्दर्य और संवेदना को किसी पर उँडेल पायी। काश वे अपने भीतर बसी स्त्री को नकारने की बजाय उसे समझ पाती!

****

ऑस्ट्रेलिया के पर्थ शहर से आया बारह शोध कर्ताओं का वह एक ग्रूप था जो मुबई से 80 किलोमीटर दूर लूनावला में अपनी प्रोजेक्ट के लिये आया हुआ था, उसी ग्रूप को भारतीय

कल्चर और माईथॉलजी पर मुझे दस व्याखान देने थे। मैं उन्हें यहाँ के बारे में बताती, वे मुझे वहाँ के बारे मे बताते। दोनों देशों की संस्कृति, राजनीति और युवा पीढ़ी से होते होते पता नहीं कैसे बात घूम फिरकर परिवार और स्त्री-पुरुष संबंधों पर आ गयी।

मि.स्टीव को और भी सुखद आश्चर्य हुआ जब मैंने उन्हें बताया कि मैं, मेरा बेटा, पुत्रवधू और कभी कभार मेरी माँ भी मेरे साथ आकर रहती हैं। उन्होंने पूछा- एक ही फ्लेट में मैंने कहा हाँ एक ही फ्लेट में। उन्होंने पूछा क्या कभी झमेला नहीं होता? मैंने कहा होता है, लेकिन संग रहते रहते हम झमेलों से निपटना सीख जाते हैं। अच्छे रिश्ते भी सोने की तरह होते हैं, टूट टूट कर जुड़ते हैं।

बातों ही बातों में मैंने बताया कि आज भी कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता जब मेरी और माँ की दिन में एक बार क़म से क़म बात न हो। मेरी बात सुन 28 वर्षीय क्रिस्टी ने एक गहरी साँस भरी और भारी मन से बताया कि पिछले 12 वर्षों से उसने न तो अपनी माँ का चेहरा देखा है और न ही उससे कोई बात ही की है। क्यों? क्योंकि उसके मनोरोगी और हिंसक सौतेले पिता के बहकावे में आकर उसकी आज़ाद ख्याल माँ ने उसे घर से निकाल दिया था। क्रिस्टी ने यह भी कहा कि उसने यहाँ तक सोच लिया है कि वह कभी माँ नहीं बनेगी जिससे उसके जैसा झुलसा बचपन किसी और को न मिले। रात के सन्नाटे में तैरते उसके दुख को पूरी तरह हज़म भी नहीं कर पायी थी कि झुलसे बचपन का जख्म लिये केली एकाएक चीख पड़ी.उसके दुख का रंग और भी गाढ़ा था। वह छह सप्ताह की दूध पीती बच्ची थी कि तभी ऑस्ट्रेलिया की सरकार ने उसे उसकी माँ की गोद से छीन लिया था। उसकी माँ ने शायद उसे पीट दिया था और किसी ने इसकी शिकायत कर दी थी। वहां का सख्त कानून जो माँ पर भी विश्वास नहीं करता, कानून ने उसे माँ की गोद से अलग कर दिया, बाद में उसकी बूआ ने उसको कानून से अपने पास ले लिया।

यह है उस परम विकसित और अति आधुनिक देश की स्त्री की कहानी जिसने पूरी आज़ादी हासिल कर रखी है। जिसके तन-मन पर कोई बंदिश नहीं है। पर क्या अति आधुनिकता और समय का बोझ ढोती उसकी आत्मा के तार बेजार नहीं हो चुके ? अपनी ही जन्मदायिनी माँ से अनजान, क्या वह भावशून्यता की बदबू में नहीं जी रही? क्या वह कभी एक सुखी और सामान्य जीवन जी पाएगी ? क्या वह देश सचमुच समझ पाया स्त्री को ? क्या वह देश समझ पाया कि समाज में मूल्यों की रक्षा के लिए यदि कोई पहरेदार है तो वह है स्त्री। क्या वह देश समझ पाया कि अस्तित्व के अर्थ, जीवन के मर्म, समाज, परिवार, स्त्री, संतान, पुरुष और व्यवस्था के अंत:निहित सम्बन्ध इतने जटिल होते हैं कि उसे कानून के दायरे में नहीं बांधा जा सकता है। इन

संबंधों की बुनियाद नहीं हिले इसके लिए जरूरी है संबंधों की अपनी नैतिकता, आपसी प्रेम, समझदारी, भरोसा और उसके अपने बंधन।

और अब राजस्थान के गाँव भीलवाडा की एक स्त्री से हुआ संवाद !

-तुम अपने बेटों से प्यार करती हो?

-हाँ हाँ करती हूँ।

-अपने पति से प्यार करती हो?

वह शर्मा गयी, बोली हम का मैम हैं !

****

झारखंड के मुंदरी गाँव में एक आदिवासी स्त्री से हुआ संवाद, उसके दोनों हाथ बहुत गहरे तक गोदे हुए थे।

-यह क्या दोनों हाथ गुदे हुए ?

-हाँ जब शादी होकर आई थी तो सिर्फ बाँए हाथ और पैर ही गुदे हुए थे। लेकिन शादी के बाद ससुर ने मेरे दाएं हाथ और पैरों को भी गुदवा दिया।

-क्या आपकी भी इच्छा थी ?

- नहीं।

मुझे याद आई अपनी दूर के रिश्ते की एक भाभी की। शादी के समय उनकी नाक छिदी हुई नहीं थी, उन्हें नहीं पसंद था नाक में पहनना। लेकिन शादी के बाद उनकी सास ने ही जोर जबरदस्ती से छिदवा दिया उनकी नाक, कि जबतक नाक में हीरे की कणी नहीं चमके औरत सुन्दर नहीं लगती।

लगता है, जहाँ भी हो औरत, स्थिति एक जैसी !

लेकिन क्या सचमुच ऐसा है ?

जहाँ जहाँ स्त्री ने 'ना' कहना सीखा। आत्मविश्वास और साहस का परिचय दिया, ज्ञान का दामन थामा, तस्वीर सचमुच बदली है। हरियाणा में पानी की बहुत किल्लत थी। हैंडपंप सारे सूखे पड़े थे। औरतें पांच पांच कि.मी चलकर पानी खींचती। बार-बार शिकायत की गयी। फाइल घूमती रही। आखिर एकदिन महिला सरपंच ने कलेक्टर की कलाई पकड़ी- बेटा, तेरी फाइल तो घूमती ही रहेगी। पर कल तक हैंडपंप ठीक नहीं हुए तो तेरी कलाई तोड़कर हथेली में धर दूँगी। सारे हैंडपंप ठीक हो गए। बाद में उस सरपंच ने न केवल खुद हैंडपंप ठीक करना सीखा वरन गाँव की दूसरी महिलाओं को भी हैंडपंप ठीक करना सिखाया।

****

लुकाच ने कहा है कि जो सत्तावर्ग है उसकी कामयाबी का राज यह है कि वह अपनी सोच को सर्वहारा में प्रतिष्ठित करने में कामयाब हो जाता है। सदियों की इस लम्बी यात्रा में सत्ता वर्ग (पुरुष) ने भी स्त्री पर यह कामयाबी हासिल कर ली है। इसीलिये आज भी ढेर सारी ऐसी महिलाएँ मिल जाएंगी जिनका पुरुष मूल्यों में समाजिकरण हो गया है, यानी वे देह से महिला हैं लेकिन सोच में सत्तर प्रतिशत पुरुष हैं।

ऐसी ही एक बुर्काधारी महिला से मिली मैं मुंबई के कोकिला बैन हॉस्पिटल में। साथ में थे उसके पिता। वह नवविवाहिता थी। वह आई तो थी पांवों की तकलीफ के इलाज के लिए।

पर उसे एक तकलीफ और थी। उसे साँस लेने में दिक्कत होती थी। उसका ओक्सीजन लेवल सामान्य से कम रहता। उसने खुदसे काबुल किया कि शादी से पहले यह दिक्कत नहीं थी क्योंकि शादी से पहले उसने बुरका कभी नहीं डाला था। बुरका के कारण उसका दम घुटता है और वो ठीक से साँस नहीं ले पाती है। मैंने उससे कहा कि जब उसने शादी से पहले बुरका नहीं डाला तो अब क्यों डाला ? क्योंकि उसके पति चाहते हैं कि वो बुरके में रहे पर क्यों ?

-क्योंकि यही इस्लाम है !

-क्या आप भी यही सोचती हैं ?

-हाँ अब सोचने लगी हूँ !

तो जरूरत है समाज को धर्म के वर्चस्व से मुक्त करने की। जहाँ जितना ज्यादा धर्म है वहाँ स्त्री उतनी ही अधिक हिंसा की और नाकेबंदियों की शिकार है। क्योंकि संसार का कोई भी धर्म स्त्री को पुरुष के समकक्ष नहीं मानता। इसलिए जरूरत है धर्म को जीवन से जोड़ने की। जरूरत है स्त्री के प्रति पूरे समाज की सोच को बदलने की। जरूरत है मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की संरचना की। सांस्कृतिक क्रांति की।

आधुनिक स्त्री भी इस भ्रम में है कि पूँजीवाद ने, मातृत्व से मुक्ति ने, देह मुक्ति ने, लिव इन रिलेशनशिप ने, जीवन से पुरुष की अनुपस्थिति ने, नौकरी की अपार संभावनाओं ने उसे मुक्त कर दिया है। पूँजीवाद ने उसे मुक्त नहीं किया वरन उसे बाज़ार में लाकर उसके शरीर की नुमायश कर रहा है, उसे वापस व्यक्ति से उपभोग की वस्तु में बदल दिया है।

मुक्ति अपने स्व के भाव के अनुसार जीने में है, औरत होने के भीतरी भय, कुसंस्कारों, आत्मदया और अंधविश्वास से मुक्त होने में है, कमतर होने के अहसास से मुक्त होने में है। मुक्ति पुरुषों की नक़ल या पुरुष जैसे बनने में या पुरुष विरोधी होने में नहीं वरन खुद की स्वभाविक प्रकृति जैसे बनने या खुद में रहने में है। स्त्री मुक्ति का सबाल मानव मुक्ति से जुड़ा है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक गैरबराबरी से मुक्ति से जुड़ा है। उसे परिवार, संतान और पुरुष से काटकर नहीं। देखा जा सकता है क्योंकि मुक्ति कभी अकेले की नहीं होती। सर्वोच्च जीवन मूल्य हमें हासिल हो इसके लिए जरूरी है कि इन मूल्यों को ग्रहण करने वाला आधारभूत ढांचा तैयार हो। जबतक पेड़ पर घुण लगा है, अंतिम पंक्ति में खड़ी अंतिम स्त्री की मुक्ति संभव नहीं, एकाध डाल भले ही संवर जाए।

संपर्क-सूत्र:
वरिष्ठ हिंदी कथाकार